श्रीश्रीगुरु-गौरांगौ जयतः

श्रीनाम संकीर्त्तन से विश्व-शान्ति समस्या का समाधान
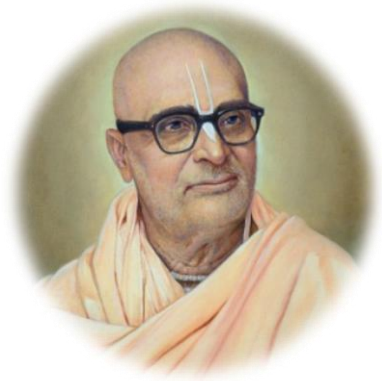
श्रीलभक्ति दयित माधव गोस्वामी महाराज जी

[सन् 1961 में हैदराबाद मठ में हुई धर्मसभा में श्रील गुरुदेवजी का सारगर्भित भाषण।]

"श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी द्वारा प्रचारित प्रेम-भक्ति अनुशीलन के द्वारा विश्व-वासियों में यथार्थ एकता व प्रीति भरा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। अहिंसा की अपेक्षा प्रेम अधिक

शक्तिशाली है। हिंसा से निवृत्ति को अहिंसा कहा जाता है। प्रेम से केवल मात्र हिंसा या दूसरों के अनिष्ट से निवृत्ति को ही नहीं समझा जाता, बल्कि इसमें दूसरों का हित करने या दूसरों को सुख प्रदान करने की चेष्टा भी विद्यमान है। वस्तुतः जगत में थोड़ी हिंसा को भी अहिंसा कहा जाता है। कारण साक्षात् रूप से

हिंसा-कार्य से निवृत्त हो जाने पर भी दूसरों का अनिष्ट किए बैगर कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता। प्रत्येक प्राणी द्वारा, वास्तव सुख के उद्देश्य से अपनी सत्ता सम्पूर्ण रूप से उत्सर्गीकृत कर देने से ही यथार्थ अहिंसा सम्भव है, क्योंकि, प्रत्येक प्राणी का भगवान से नित्य सम्बन्ध है इसलिए भगवान के सुख में ही

जीव का वास्तविक सुख है। या यू् कहें कि वास्तविकता में प्रत्येक प्राणी पूर्ण तत्त्व स्वरूप भगवान से सम्बन्ध युक्त होने के साथ साथ आपेक्षिक तत्त्व है, अतः पूर्ण तत्त्व भगवान की प्रीति पर ही जीव का वास्तविक सुख निर्भर करता है। जिस प्रकार, वृक्ष की जड़ में पानी देने से वृक्ष की सभी शाखा-प्रशाखाओं की तुष्टि होती

है, पेट को भोजन देन से सब इन्द्रियाँ तृप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार सब कारणों के कारण, सभी प्राणियों के साथ सम्बन्धयुक्त, अद्वयज्ञानतत्त्व, सर्वव्यापक, अच्युत, श्रीहरि की सेवा के द्वारा सब प्राणियों की सेवा या तृप्ति होती है।

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्तित
तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव
सर्वर्हणमच्युतेज्या ।।
(श्रीमद्भागवत 4/31/14)

जिस प्रकार वृक्ष की जड़ सींचने से उसके तना, शाखा, उपशाखा आदि सभी का पोषण हो जाता है (जड़ को छोड़कर पृथक् रूप से विभिन्न स्थानों पर सिंचन करने पर वैसा नहीं होता) और जैसे भोजन द्वारा प्राणों को तृप्त करने से समस्त इन्द्रियाँ पुष्ट होती हैं (किन्तु इन्द्रियों को अलग-अलग अन्न देने पर वैसा नहीं

होता) उसी प्रकार एकमात्र श्रीकृष्ण की पूजा द्वारा ही निखिल देव-पितृ आदि की पूजा हो जाती है (उनकी अलग-अलग पूजा करने की आवश्यकता नहीं होती)।

विशुद्ध प्रेम, पूर्ण-केन्द्रित व भगवत्केन्द्रित होता है। पूर्ण वस्तु भगवान को केन्द्र न बनाकर देह, परिवार, समाज, प्रदेश, देश व विश्व

आदि छोटे व बड़े हिस्से को केन्द्र करके प्रीति करने से, दूसरे देह, दूसरे परिवार, दूसरे समाज, प्रदेश, देश व विश्वादि के साथ संघर्ष होना अवश्यम्भावी है। विभिन्न केन्द्रों को अवलम्बन करके वृत्त अंकित करने से, जिस प्रकार उनकी परिधियाँ एक दूसरे से कटती हैं, उसी प्रकार, स्वार्थों के केन्द्र भिन्न-भिन्न

होने से उनका परस्पर टकराना अनिवार्य है। पूर्ण-केन्द्रित चेष्टा होने से, पूर्ण के बराबर कोई न होने के कारण, संघर्ष की कोई सम्भावना ही नहीं रहती। पूर्ण की प्रीति या प्रसन्नता के द्वारा प्रत्येक अंश की प्रसन्नता होती है।

“तस्मिन्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत्”

इसलिए श्रीभगवत् प्रेमानुशीलन

के द्वारा सभी प्राणियों की यथार्थ प्रीति साधित होती है। परमेश्वर से सम्बन्ध रहित प्रीति का ही दूसरा नाम “काम” है- ये ही हिंसा, द्वेष व अशान्ति का मूल कारण है। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जी ने, श्रीकृष्ण को परतत्त्व एवं जीव को श्रीकृष्ण की तटस्था शक्ति का अंश व उनसे भेदाभेद-समबन्धयुक्त ‘नित्य-दास’

कहकर निर्णय किया है। श्रीकृष्ण अपने अतुलनीय माधुर्य और सौन्दर्य के द्‌वारा जीवों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, यहाँ तक कि वे (नन्दनन्दन श्रीकृष्ण) सभी अवतारों को भी आकर्षित करते हैं। इसलिए श्रीकृष्ण ही सर्वोत्तम प्रेमास्पद हैं। श्रीकृष्ण-प्रीति के अनुशीलन के द्‌वारा जीवों के हृदय में विशुद्ध

प्रेम के सुकोमल भाव स्वयं ही प्रकाशित होते हैं। कलियुग में उक्त, श्रीकृष्ण-भक्ति अनुशीलन का सर्वोत्तम साधन श्रीनाम-संकीर्तन है। श्रीभगवन्नाम-कीर्तन में, मनुष्य मात्र का ही अधिकार रहने से उक्त नाम-संकीर्तन धर्म में, विश्व के सभी देशवासी एकत्रित होकर विशुद्ध प्रेम-सूत्र में आबद्ध हो सकते हैं।”

श्रीलपरमगुरुदेव